© 2008 | International Journal of Scientific Research in Science and Technology
IJSRST | Volume I | Issue I | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

कालिदास के काव्यों में व्यवहृत 'शिष्टाचार'

डॉ० रजनीश कुमार पाठक
प्रवक्ता (संस्कृत)
किशोरी रमण इण्टर कॉलेज,
मथुरा, (उत्तर प्रदेश) भारत

सारांश – काव्य के अनुशीलन से लोक-व्यवहार का ज्ञान प्राप्त होता है। कालिदास, बाणभट्ट, भवभूति आदि कवि अपने अपार अलौकिक अनुभव को अपनी रचनाओं में निवेश करने के कारण अत्यधिक विख्यात हुए हैं। लोक व्यवहार के ऐसे संस्कृत तत्व जो जीवन को परिष्कृत करते हैं शिष्टाचार कहलाता है। काव्य-नाटक आदि में व्यवहृत शिष्टाचार हमें आचरण की शिक्षा देता है। लोक व्यवहार के वर्णन से काव्य का विषय वैविध्य बना रहता है; जो इसकी लोकप्रियता का कारण होता है।

प्रमुख शब्द- वार्तालाप, शिष्टाचार, अतिथि सत्कार, अगवानी, अनुगमन, भेंट उपहार, सामरिक शिष्टाचार, स्वागत संस्कृति।

महाकवि कालिदास अपने काव्यों में लोकोचित शिष्टाचार को दिखलाने के प्रति अत्यन्त जागरूक थे। उन्होंने विविध प्रसङ्गों में भिन्न-भिन्न शिष्टाचारों का समावेश किया है। जैसे-पात्रों के संवाद में वार्तालाप का शिष्टाचार, दो व्यक्तियों (पात्रों) के परस्पर मिलने अथवा बिछुड़ने पर लोकोचित अभिवादन आदि का शिष्टाचार, युद्ध के प्रसङ्ग में सामरिक शिष्टाचार का यथाप्रसङ्ग सन्निवेश किया गया है। यहाँ इनका विवेचन किया जा रहा है।

I. वार्तालाप का शिष्टाचार

कालिदास के संवाद अत्यन्त रोचक एवं मनोहर होते हैं, इसका सर्वप्रमुख कारण उनमें विविध शिष्टाचारों का समावेश है, जिनमें औपचारिकता के साथ-साथ व्यावहारिकता का निर्वाह होता है। इन संवादों में कवि वार्तालाप का शिष्टाचार दिखलाते हैं। इस सन्दर्भ में उन्होंने यह विशेष रूप से दिखलाया है कि व्यक्ति के विशिष्ट कार्य से सम्बद्ध कुशलक्षेम पूछकर ही वार्ता का आरम्भ करना चाहिये। अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रथम अङ्क में दुष्यन्त शकुन्तला से वर्तालाप का आरम्भ यह पूछकर करते हैं कि क्या आपका तप बढ़ रहा है? **(अपि तपो वर्धते?)** [1]। इसी नाटक के पञ्चम अङ्क में कण्वाश्रम से आए शिष्यों से राजा दुष्यन्त-**"अपि निर्विघ्नतपसो मुनयः।** [2] (ऋषिलोगों की तपस्या तो निर्विघ्न चल रही है)- इस वाक्य के द्वारा वार्ता प्रारम्भ करते हैं।

इसके बाद भगवान् काश्यप का कुशल-क्षेम पूछते हैं (**अथ भगवाल्लोकानुग्रहाय कुशली काश्यपः तत्रैव** 5/14 के बाद)। इसी प्रकार रघुवंश के पञ्चम सर्ग में वरतन्तु-शिष्य-कौत्स के दक्षिणा हेतु रघु के समक्ष आने पर राजा उनसे पहले गुरु वरतन्तु की कुशलता (**'कुशली गुरुस्ते'**-रघुवंश-5/4) अनन्तर उनके तप की निर्विघ्नता के बारे में पूछते हैं। [3] कुमारसम्भव के पञ्चम सर्ग में ब्राह्मणवेशधारी शिव, पार्वती से वार्तालाप आरम्भ करते हुए कहते हैं -कहिये, हवन आदि कार्यों के लिए आपको इस तपोवन में समिधा, कुश और स्नान करने के योग्य जल तो मिल जाता है न? (**अपि क्रियार्थं सुलभं समित्कुशं जलान्यपि स्नानविधिक्षमाणि ते** - कुमारसंभव

5/33)। इसी तरह राज्याश्रम के मुनि दिलीप से तपोवन के मुनि वशिष्ठ जी ने उनका आतिथ्य करने के बाद पूछा आपके राज्य में सब कुशल तो हैं – **'प्रपच्छ कुशलं राज्ये राज्याश्रममुनिं मुनिः।'** – रघुवंश 1/58

नायक–नायिका के वार्तालाप में शिष्टाचार के निर्वाह के लिए कवि ने अपनी सभी प्रमुख नायिकाओं के साथ सखियों को रखा है, जो प्रेमालाप में शिष्टता का आधान करते हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रथम अङ्क में शकुन्तला के मन की बात कवि अनसूया के द्वारा दुष्यन्त से पुछवाते हैं कि आप किस राजर्षि–वंश को अलङ्कृत करते हैं आदि। इतना ही नहीं, शकुन्तला का जन्म विषयक वृत्तान्त भी अनसूया ही दुष्यन्त को सुनाती है। उल्लेखनीय है कि मूलकथा (महाभारत–आदिपर्व) में शकुन्तला स्वयं अपने जन्म के बारे में दुष्यन्त को बताती है, जिससे उसका चरित्र निर्लज्ज का सा प्रतीत होता है। यहाँ कालिदास ने नायक–नायिका के वार्तालाप में शिष्टाचार का उत्कृष्ट उदाहरण दिया है।

विक्रमोर्वशीय के द्वितीय अङ्क में जब उर्वशी स्वर्ग को लौटना चाहती है तब वह राजा पुरूरवा से स्वयं न कहकर सखी चित्रलेखा के द्वारा कहलवाती है कि महाराज की आज्ञा हो तो अपनी प्रियसखी के समान आपकी कीर्ति को स्वर्ग को ले जाऊँ। [(4)] कुमारसम्भव में ब्रह्मचारी–पार्वती संवाद के अन्त में बह्मचारी द्वारा किए जा रहे शिव की निन्दा और अधिक सह सकने में असमर्थ पार्वती सखी के द्वारा उसे बोलने से मना करवाती है। इतना ही नहीं, अपने तप के द्वारा खरीदे गए भगवान् शंकर से वह स्वयं विवाह सम्बन्धी वार्ता न करके अपनी सखियों से कहवाती है कि यदि आप मुझसे विवाह करना चाहते हैं तो मेरे पिता हिमालय से मिलिये। [(5)]

II. परस्पर मिलन का शिष्टाचार -

सर्वसामान्य में ऐसा देखा जाता है कि जब दो व्यक्ति आपस में मिलते हैं अथवा बिछुड़ते हैं तो लोकोचित शिष्टाचार का निर्वाह किया करते हैं। ऐसे शिष्टाचारों में छोटे व्यक्ति बड़ों को प्रणाम करते हैं, समवयस्क एक दूसरे के गले मिलते हैं अथवा हाथ मिलाते हैं। कालिदास ने अपने काव्यों में इन सभी शिष्टाचारों को दिखलाया है।

रघुवंश के प्रथम सर्ग में राजा दिलीप एवं सुदक्षिणा ने आश्रम में पहुंचकर सर्वप्रथम गुरु वशिष्ठ को चरण छूकर प्रणाम किया था – **"तयोर्जगृहतुः पादान् राजा राज्ञी च मागधी।''** रघुवंश– 1/57 अभिज्ञानशाकुन्तल के चतुर्थ अङ्क में पतिगृह को जाती हुई शकुन्तला ने पिता कण्व का चरणस्पर्श किया था। यज्ञ की रक्षा के लिए विश्वामित्र के साथ जाते हुए राम और लक्ष्मण अपनी माताओं एवं पिता के चरण छूते हैं। पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए उद्यत दोनों धनुर्धर पिता के चरणों में प्रणाम करने के लिए जैसे ही झुके, वैसे ही दशरथ जी की आँखों से उन दोनों पर आँसुओं की बूंदे टपक पड़ीं –

तौ निदेशकरणोद्यतौ पितुर्धन्विनौ चरणयोर्निपेततुः।

भूपतेरपि तयोः प्रवत्स्यतोर्नग्रयोरुपरि बाष्पबिन्दवः।। – रघुवंश 11/4

समवयस्क पुरुष अथवा स्त्रियाँ आपस में गले मिला करती हैं। कालिदास ने ऐसा व्यवहार सिर्फ सखियों तक ही सीमित रखा है। शाकुन्तल में हस्तिनापुर जाती हुई शकुन्तला अपनी सखी अनसूया एवं प्रियंवदा से गला मिलती है। विक्रमोर्वशीय के प्रथम अङ्क में केशी नामक राक्षस से अपहृत उर्वशी एवं उसकी सखी चित्रलेखा, राजा पुरूरवा द्वारा छुड़ा लिए जाने पर मेनका, रम्भा आदि सखियों से गले मिलती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मिलन अथवा जुदाई के समय अत्यधिक स्नेह का प्रकाशन करने के लिए समवयस्क सखियाँ आपस में गले मिला करती थीं। सम्भव है कवि के समय तक पुरुषों में यह व्यवहार प्रचलित न हुआ हो, अन्यथा कालिदास उसे अवश्य दिखलाते। आज पुरुष एवं स्त्री दोनों में ऐसा व्यवहार देखा जाता है।

दो व्यक्तियों के आपस में मिलने अथवा बिछुड़ने के समय परस्पर हाथ मिलाने का शिष्टाचार कालिदास के समय तक प्रचलित हो चुका था। विक्रमोर्वशीय के प्रथम अङ्क में केशी नामक राक्षस उर्वशी का अपहरण कर लेता है। नारद द्वारा यह सूचना पाकर इन्द्र गन्ध र्व राज चित्ररथ को उसे छुड़ाने के लिए भेजते हैं किन्तु इससे पूर्व राजा पुरूरवा उर्वशी को राक्षस से छुड़ा चुके होते हैं। इसी प्रसङ्ग में

कालिदास ने राजा पुरूरवा और गन्धर्वराज चित्ररथ को परस्पर हाथ मिलाते हुए दिखलाया है। [6] इसके अतिरिक्त उनके काव्यों में ऐसा उल्लेख और कहीं नहीं मिलता। साथ ही, उन्होंने ऐसा व्यवहार दो राजाओं के बीच दिखलाया है। आज भी देश-विदेश के नेतागण (राजा) लगभग अनिवार्य रूप से इस शिष्टाचार का निर्वाह करते हैं। आज तो पुरुष (राजनेता) को स्त्री (राजनेत्री) के साथ भी हाथ मिलाते देखा जाता है। अब यह व्यवहार सिर्फ राजाओं तक सीमित न रहकर जनसामान्य में व्याप्त हो चुका है।

परस्पर मिलन के समय शिष्टाचारों के निर्वाह-क्रम में कालिदास पौर्वापर्यक्रम और योग्यतानुसार ही सम्मान किये जाने का व्यवहार दिखलाते हैं। विवाह हेतु प्रस्थान करते समय भगवान् शंकर को इन्द्रादि देवताओं द्वारा प्रणाम किए जाने पर शिवजी ने सिर हिलाकर ब्रह्मा जी का, चार शब्दों से (कुशल मङ्गल पूछकर) विष्णु का, स्मित हास्य से इन्द्र का और केवल निहार कर अन्य देवताओं का सम्मान किया

कम्पेन मूर्ध्ने: शतपत्रयोनिं वाचा हरिं वृत्रहणं स्मितेन।

आलोकमात्रेण सुरानशेषान् सम्भावयामास यथा प्रधानम्।।

-कुमारसंभव-7/46

इसी प्रकार रघुवंश में कवि वर्णन करते हैं कि वनवास से लौटने पर सुशिक्षित राम ने सर्वप्रथम कुलगुरु वशिष्ठ जी को प्रणाम किया। फिर शत्रुघ्न समेत भरत को छाती से लगाकर उनका मस्तक सूंघा (**मूर्धनि चोपजघ्रौ रघुवंश**- 13/70)। इससे यह भी ज्ञात होता है कि स्नेहातिरेक में स्वजन अपने छोटे भाई-बन्धुओं को छाती से लगाकर उनका मस्तक सूंघते थे। ऐसा आज भी देखा जाता है। उपर्युक्त सभी शिष्टचार वर्तमान संस्कृति के अभिन्न अङ्ग बन चुके हैं।

III. **अतिथि-सत्कार-** प्राचीन काल से ही भारतवर्ष में अतिथि सत्कार की सशक्त परम्परा रही है। उपनिषद् ग्रन्थों में अतिथि को देवता कहकर (**'अतिथि देवो भव'**) [7] उनका आदर किया गया है। अतिथि-सत्कार को प्राचीन भारत में इतना महत्त्व मिला कि इसे धर्म से जोड़कर गृहस्थों के लिए नित्य-कर्म का स्वरूप दिया गया। 'कल्प' नामक वेदाङ्ग के चार भेदों में अन्यतम-गृह्यसूत्र, जिसमें गार्हस्थ्य-जीवन से सम्बद्ध धार्मिक अनुष्ठानों का निर्देश किया गया है, में पञ्चमहायज्ञों [8] का वर्णन है। इनमें 'नृयज्ञ' अतिथि-सत्कार का ही विधान करता है। कालिदास ने यह शिष्टाचार बड़े मनोयोग से अपने काव्यों में दिखलाया है।

कवि के वर्णन से यह ज्ञात होता है कि अतिथि को सर्वप्रथम पैर धोने के लिए जल दिया जाता था अथवा स्वयं उनका पैर धोया जाता था। अनन्तर फलयुक्त अर्घ [9] से उनका पूजन किया जाता था। अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रथम अङ्क में राजा दुष्यन्त के आश्रम में पहुँचने पर अनसूया शकुन्तला से फलयुक्त अर्घ लाने का निर्देश देती है और यह घड़े का जल पादोदक हो जाएगा - ऐसा कहती है **(फलमिश्रमर्घमुपहर। इदं पादोदकं भवष्यिति।** अभिज्ञान॰ - 1/25 के बाद)। इसपर राजा कहते हैं कि आपके सत्य और प्रियवचन से ही आतिथ्य कार्य हो गया (भवतीनां सूनृतयैव गिरा कृतमातिथ्यम्)। इससे स्पष्ट होता है कि प्रियवचन भी आतिथ्य का अङ्ग माना जाता था। इसीलिए यक्ष ने कुटज-पुष्पों से अर्घ-सामग्री तैयार कर प्रसन्नता-पूर्वक प्रेमभरे वचनों से मेघ का स्वागत किया

स प्रत्यग्रै: कुटजकुसुमै: कल्पितार्घाय तस्मै

प्रीत: प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार।।

-पूर्वमेघ- 4

राजदरबार में आश्रम से आए ऋषि मुनयों का वैदिक-विधि से अतिथि-सत्कार किया जाता था, जिसे राजा के गुरु सम्पादित करते थे। अभिज्ञानशाकुन्तल के पञ्चम अङ्क में दुष्यन्त के गुरु सोमरात ने कण्वाश्रम से आए उनके शिष्यों का वैदिक-विधि से सत्कार किया था(**अमूनाश्रमवासिन: श्रौतेन विधिना सत्कृत्य...**)।[10] ऋषिगण तो अपनी तपस्या के प्रभाव से ही विशिष्ट सामग्री जुटाकर आश्रम में

आए अतिथि का स्वागत करते थे। महर्षि वाल्मीकि ने शत्रुघ्न का सत्कार इसी तरह किया था। [11] वशिष्ठ जी ने आश्रम में आए दिलीप दम्पती कां ऐसा आतिथ्य-सत्कार किया कि रथ की हचक से उन्हें जो थकावट हुई थी, सो सब दूर हो गई-

तमातिथ्यक्रियाशान्तरघक्षोभपरिश्रमम्। (रघुवंश- 1/58)

इस प्रकार, कालिदास ने विरही यक्ष से लेकर महर्षि वशिष्ठ तक सामान्य एवं विशिष्ट सभी पात्रों द्वारा अतिथि-सत्कार किए जाने का व्यवहार दिखलाया हैं। किं बहुना, वे अतिथि सत्कार से प्रमाद करनेवाली शकुन्तला को दुर्वासा ऋषि से शाप दिलाकर इसे अनिवार्य रूप से करने का निर्देश देते हैं। आज भी भारतीय समाज में अतिथि-सत्कार को प्रमुख शिष्टाचार माना जाता है। सर्वसामान्य अपनी योग्यता एवं क्षमता के अनुसार अतिथियों का सत्कार कर भारतीय संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए हुए हैं।

IV. **अगवानी-** भारतीय समाज में यह शिष्टाचार देखा जाता है कि किसी विशिष्ट आगन्तुक के स्वागतार्थ, लोग अपने स्थान, घर से आगे बढ़कर उन्हें ससम्मान घर अथवा निश्चित स्थान पर लाते हैं। ऐसा उनके प्रति विशेष आदर व्यक्त करने के लिए किया जाता है। कालिदास ने अपने काव्यों में अनेक स्थानों पर यह शिष्टाचार दिखलाया है।

रघुवंश महाकाव्य में पुष्पक विमान पर वनवास से अयोध्या लौटते हुए राम, सीता से कहते हैं कि देखो सीते! विमान के नीचे लटकनेवाली सोने की किङ्किणियों का शब्द सुनकर गोदावरी नदी के सारसों की पाँते उड़ती हुई ऊपर चली आ रही हैं, जैसे ये तुम्हारी अगवानी करने आती हो। [12] इसी प्रसंग में आगे वर्णन है कि गेरुआ वस्त्र पहने हुए तथा हाथ में पूजन सामग्री लिए हुए मन्त्रियों सहित भरत ने जिनके आगे-आगे वशिष्ठ जी और पीछे-पीछे सेना थी, भगवान् राम की अगवानी की। सप्तर्षिगण को दूर से ही आते देख हिमालय ने अर्घादि सामग्री से उनकी अगवानी की थी। [13] गोसेवा-व्रत धारण करनेवाले राजा दिलीप जब नन्दिनी (गौ) को चराकर आश्रम के मार्ग में उसके पीछे-पीछे आते थे, उस समय रानी सुदक्षिणा अगवानी के लिए खड़ी रहती थी। कालिदास वर्णन करते हैं कि इनदोनों (राजा और रानी) के बीच में वह लाल रंग की नन्दिनी ऐसी शोभा दे रही थी, जैसे दिन और रात के बीच में साँझ की लाली हो

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या।

तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या।। - रघुवंश- 2/20

विवाह के अवसर पर कन्यापक्ष के लोगों द्वारा वरपक्षीय जनों की अगवानी विशेष रूप से देखी जाती है। ऐसा कालिदास भी दिखलाते हैं। राजा जनक को जब यह समाचार मिला कि विश्वामित्र जी के साथ राम और लक्ष्मण भी आए हैं तब वे उनकी अगवानी करने चले थे। विवाहार्थ भगवान् शंकर के आगमन से प्रसन्न होकर पर्वतराज हिमालय अपने धनी कुटुम्बियों को हाथी पर चढ़ाकर उनकी अगवानी के लिए चले थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि आगन्तुकों की अगवानी करना भी उनके सत्कार का अङ्ग था। राजा एवं वर आदि विशिष्ट व्यक्तियों की अगवानी कुलगुरु, कुटुम्बों तथा सेनाओं के साथ भव्य रूप से की जाती थी। आज भी विवाहादि अवसर के साथ-साथ दैनिक व्यवहार में भी यह शिष्टाचार प्रचलित है। राजनेताओं (मन्त्रियों) की अगवानी करना तो स्थानीय अधिकारियों का कर्तव्य (ड्यूटी) सा बन गया है। विदेशी राज्य-प्रमुखों की भी अगवानी स्थानीय राज्य प्रमुखों अधिकारियों द्वारा की जाती है। जनसामान्य में भी इस शिष्टाचार का प्रचलन है।

V. **अनुगमन (विदाई)**-सर्वसामान्य में ऐसा देखा जाता है कि स्नेहीजनों की विदाई के समय लोग उनके साथ कुछ दूर तक चलकर पुन: लौट आते हैं। यह शिष्टाचार कालिदास के समय में भी प्रचलित था। रघुवंश में विदर्भराज भोज ने अपनी छोटी बहन इन्दुमती के साथ अज का विवाह कर सामर्थ्यानुसार धन देकर विदा किया और उनके साथ कुछ दूर तक जाकर पहुँचाने गए (**प्रास्थापयद्राघवमन्वगाच्च**।- रघुवंश- 7/32)। इसीतरह महाराज दशरथ ने अपने चारों पुत्रों का विवाह सम्पन्न कराके लौटते समय मार्ग में तीन पड़ाव आगे पहुँचकर वहाँ से जनक जी को लौटा दिया और स्वयं बड़े प्रसन्न मन से अयोध्या की ओर चल पड़े -

अध्वसु त्रिषु विसृष्टमैथिलः स्वां पुरी दशरथो न्यवर्तत। –रघुवंश– 11/57

इस प्रसङ्ग में कालिदास शकुन्तला की विदाई के समय यह व्यवहार दिखलाते हैं कि प्रिय व्यक्ति का जल के किनारे तक अनुगमन करना चाहिये। शकुन्तला के साथ हस्तिनापुर जाते हुए शाङ्गुरव कण्व से कहते हैं कि भगवन् ऐसा सुना जाता है कि जल के किनारे तक ही प्रिय व्यक्ति का अनुगमन करना चाहिये। यह सरोवर का तट है। अतः यहाँ से आप लौट जाँय–

"भगवन्, ओदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्य इति श्रूयते" – अभिज्ञान॰– 4/15 के बाद

वस्तुतः यह व्यवहार मुख्यतया ग्रामीण–संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। आज भी ग्रामीण समाज में नदी तट तक अथवा किसी तालाब–जलाशय तक स्नेहीजनों को विदा करते समय उसके साथ पहुँचाने जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास के समय में भी यह प्रचलन था।

VI. **भेंट-उपहार-** राजाओं को अथवा स्नेही जनों को अपनी सामर्थ्य के अनुसार भेंट–उपहार देकर लोग अपने शिष्टाचार का प्रकाशन करते हैं। कालिदास ने भी ऐसा व्यवहार कई स्थानों पर दिखलाया है। रघुवंश में राजा दिलीप रानी सुदक्षिणा के साथ जब वशिष्ठाश्रम को जा रहे थे, तब ब्राह्मणों ने उन्हें अर्घ्य भेंट की और अहीरों की बस्ती के निवासी बड़े–बूढ़े लोग तुरन्त निकाले गए मक्खन लेकर उनको भेंट करने आए थे, जिनसे राजा और रानी मार्ग के वृक्षों का नाम पूछते जाते थे –

हैयङ्गवीनमादाय घोषवृद्धानुपस्थितान्।

नामधेयानि पृच्छन्तौ वन्यानां मार्गशाखिनाम्।। – रघुवंश– 1/45

राजा राम ने जब अश्वमेध के लिए घोड़ा छोड़ा था तब अन्य राजाओं ने आकर उन्हें उपहार दिये थे। अभिज्ञानशाकुन्तल के द्वितीय अङ्क में कण्व की अनुपस्थिति में यज्ञ–रक्षणार्थ राजा दुष्यन्त से कुछ दिनों तक आश्रम में रुकने का आग्रह करने गए तापस कुमारों ने राजा को फल भेंट की थी। मालविकाग्निमित्र के तृतीय अङ्क के 'प्रवेशक' से यह सूचना मिलती है कि परिव्राजिका ने अपनी सेविका–समाहितिका को आज्ञा दी थी कि हमें रिक्त हस्त महारानी से मिलने नहीं जाना चाहिये, अतः एक नींबू ही उपहार के रूप में लेकर उनसे मिल लूँगी **(आज्ञाप्तास्मि भगवत्या-समाहितिके ! देवस्योपवनस्थं बीजपूरक गृहीत्वागच्छेति)।** इसी नाटक के चतुर्थ अङ्क में सर्पदंश का बहाना करनेवाला विदूषक रानी धारिणी से कहता है कि महारानी का दर्शन करुँगा–ऐसा सोचकर उपहार स्वरूप फूल लेने के लिए मैं प्रमदवन गया था, वहीं मुझे साँप ने काट लिया **(देवीं द्रक्ष्यामीत्याचार पुष्पग्रहणकारणात्प्रमदवनं गतोऽस्मि)।**[(14)] यहाँ कवि ने स्पष्ट सङ्केत दिया है कि राजाओं अथवा रानियों से मिलने के समय उन्हें उपहार भेंट किया जाना आचार था।

इसप्रकार, कालिदास के समय में राजाओं को उनके अनुचरों, अन्य राजाओं, तपस्वियों तथा जनसामान्य द्वारा सामर्थ्यानुसार उपहार देना सामान्य आचार माना जाता था। रानियों से मिलते समय भी ऐसा ही किया जाता था। ऐसा लोग उनके प्रति आदर एवं सम्मान प्रकट करने के लिए करते थे।

VII. **सामरिक शिष्टाचार-** कालिदास ने अपने काव्यों में विशेषकर रघुवंश में योद्धाओं के परस्पर युद्ध का वर्णन किया है। इस प्रसङ्ग में उन्होंने युद्ध–सम्बन्धी शिष्टाचारों को दिखलाया है।

विवाह के उपरान्त इन्दुमती को साथ लेकर सेना सहित अपनी राजधानी लौटते हुए राजा अज के साथ मार्ग में स्वयंवर से निराश लौटे शेष राजाओं का युद्ध हुआ। यहाँ कवि दिखलाते हैं कि जब युद्ध प्रारम्भ हुआ तब पैदल पैदलों से, रथवाले रथवालों से, घुड़सवार घुड़सवारों से और हाथी सवार हाथीसवारों से भिड़ गए –

पत्तिः पदातिं रथिनं रथेस्तुरङ्गसादी तुरगाधिरूढम्।

यन्ता गजस्याभ्यपतद्गजस्थं तुल्य प्रतिद्वन्द्वि बभूव युद्धम्।।

– रघुवंश– 7/37

प्राचीनकाल में सेना के मुख्यत: चार अङ्ग होते थे पदाति, रथी, अश्वारोही तथा गजारोही। इन्हें चतुरङ्गिनी सेना कहा जाता था। उक्त प्रसङ्ग में कालिदास ने यह शिष्टाचार दिखलाया है कि युद्ध के प्रारंभ होने पर सेना के सभी अङ्ग अपने समान अङ्ग के योद्धाओं से ही लड़ाई की। उन्होंने इस शिष्टाचार का अतिक्रमण नहीं किया।

इसी प्रसङ्ग से यह भी ज्ञात होता है कि धनुषधारी योद्धाओं के बाण पर उनके नाम अंकित होते थे। इस तथ्य की पुष्टि विक्रमोर्वशीय की उस घटना से भी होती है, जिसमें संगमनीयमणि को लेकर उड़े गिद्ध को मारने वाले योद्धा आयुष् की पहचान उसके बाण पर अंकित नाम से हुई थी। युद्ध में धनुर्धर अपने कुल और नाम बताकर बाण छोड़ते थे। दोनों ओर के सैनिक अपने-अपने राजाओं का नाम ले-लेकर लड़ते थे। रथ पर योद्धा-विशेष की पहचान के लिए विशिष्ट झण्डा लगा होता था, जिससे विजेता योद्धा वीरगति प्राप्त करनेवाले योद्धा को पहचान पाते थे। रथारूढ़ योद्धा के साथ अनिवार्य रूप से रथी ही युद्ध करते थे। इसीलिए रावण को रथ पर और राम को पैदल देखकर इन्द्र ने उनके लिए अपना वह रथ भेजा था, जिसमें बड़े अच्छे घोड़े जुते हुए थे

रामं पदातिमालोक्य लङ्केशं च विरूथिनम्।

हरियुग्यं रथं तस्मै प्रजिघाय पुरन्दरः।।

-रघुवंश- 12/84

कालिदास युद्ध के प्रसंग में यह शिष्टाचार दिखलाते हैं कि दो घुड़सवारों की लड़ाई में किसी एक के हताहत होकर मूर्छित हो जाने पर उसके ऊपर वार नहीं किया जाता था। (15)

दो रथी योद्धाओं के सारथि जब मारे जाते थे, तब योद्धा स्वयं रथ भी चलाते और युद्ध भी करते थे। परन्तु जब उनके घोड़े भी मार डाले जाते थे तब वे रथों से कूदकर पैदल ही गदा लेकर लड़ने लगते और जब उनकी गदाएँ भी टूट जाती थीं तब वे मल्लयुद्ध करने लगते थे

अन्योन्यसूतोन्मथनादभूतां तावेव सूतौ रथिनौ च कौचित्।

व्यश्वौ गदाव्याहतसम्प्रहारौ भग्नायुधौ बाहुविमर्दनिष्ठौ।।

- रघुवंश- 7/52

युद्ध की समाप्ति पर विजयी सेना की ओर से शंख फूंके जाते थे, जिस ध्वनि को पहचानकर उनकी सेनाएँ युद्ध करना बन्द कर देती थी। (16)

निष्कर्ष : - भारतीय संस्कृति के संरक्षक कवि कालिदास के काव्यों में व्यवहृत शिष्टाचार हमें आचरण की शिक्षा देता है। इसके सम्यक् समायोजन से काव्य का कथानक अत्यन्त सहज और सरल हो गया है, जो साधारण पाठकों-श्रोताओं को भी आनन्दनुभूति कराने में सर्वथा समर्थ है।

सन्दर्भ सूची : -

1. अभिज्ञानशाकुन्तल-1/25 के बाद।
2. तत्रैव-5/14 से पूर्व
3. रघुवंश- 5/5
4. विक्रमोर्वशीय - 2/18 से पूर्व
5. कुमारसम्भव- 6/1
6. विक्रमोर्वशीय-1/15 के बाद
7. तैत्तिरीयोपनिषद् - 1/11

8. अन्य चार यज्ञ हैं - (1) ब्रह्मयज्ञ (वेद-वेदाङ्गादि का स्वाध्याय) (2) पितृ-यज्ञ (श्राद्ध-तर्पण) (3) देवयज्ञ (देवताओं का पूजन-हवन) (4) भूतयज्ञ (मानवेतर प्राणियों को भोजन देना)।
9. अर्घ में आठ वस्तुएँ होती हैं - 'रक्तबिल्वाक्षतैः पुष्पैः दधिदूर्वाकुशैस्तिलैः' देवीपुराण
10. अभिज्ञानशाकुन्तल - 5/5 के बाद
11. रघुवंश- 15/12
12. तत्रैव- 13/33
13. कुमारसंभव- 6.50
14. मालविकाग्निमित्र-4/3 के बाद
15. रघुवंश-7/47
16. रघुवंश- 7/63-64